महात्मा गाँधी का स्त्री विमर्श के विविध आयाम

डॉ0 माईकल
स्नातकोत्तर गाँधी विचार विभाग,
तिलकामाँझी भागलपुर, विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार
Email: drmaikalbh@gmail.com

सारांश

नारियों को जागरूक और सचेत बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। गांधीजी नारी समानता हेतु नारियों का शिक्षित होना आवश्यक मानते हैं। 'हरिजन' के एक अंक में उन्होंने स्त्री शिक्षा पर बल देते हुए कहा है– ''मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूँ, लेकिन यह भी मानता हूँ स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योग पुरुष की नकल करके या उसकी प्रतिस्पर्धा करके नहीं दे सकती है चाहे तो वह प्रतिस्पर्धा कर सकती है परन्तु पुरुष की नकल करके वह उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकती, जिस ऊँचाई तक वह पहुँच सकती है। उसे पुरुष का पूरक बनना चाहिए। गांधीजी स्त्री–शिक्षा को पुरुष शिक्षा से ज्यादा महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा– पुत्र को शिक्षित करने का अर्थ है एक सदस्य को शिक्षित करना और स्त्री को शिक्षित करने का दो परिवारों को शिक्षित करना।''

महात्मा गांधी के मानस पटल में यह बात स्पष्ट रूप में थी कि महिला उत्थान की केवल नैतिक अनिवार्यता नहीं है, बल्कि लोकतांत्रिक परंपराओं को सुदृढ़ करने तथा अन्याय व उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करने की पूर्व शर्त भी। गांधीजी ने जिस बात का स्वप्न देखा था वह अधिकारों, समान अवसर और समान भागीदारी वाली अधिक न्यायोचित और मानवीय दुनिया की दिशा में की जा रही यात्रा का एक कदम भर है। उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं की उन्नति हेतु बहुत सराहनीय प्रयास किया था। वे यह निश्चित रूप से मानते थे कि स्त्रियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार किये बिना भारत की सर्वतोमुखी प्रगति संभव नहीं है। भारतीय समाज में नारी का स्थान पूजनीय रहा है। समाज तथा सभ्यता के विकास में महिलाओं का योगदान सर्वोपरि रहा है और कभी वह बेटी बनकर परिवार की शोभा बढ़ाती है तो बहन बनकर भाइयों से दुलार करती है, वहीं माँ बनकर संतान का लालन–पालन करती है। बड़ी होने पर भी उसका सम्मान कम नहीं होता और वह दादा–नानी बनकर गौरवमय जीवन जीती है। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में स्त्री का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। जहाँ भी स्त्री के सम्मान को चोट पहुँची है वहाँ विकास नहीं विनाश हुआ है।

मुख्य शब्द– *समाज, नारी, शोभा, विश्व, विकास, विनाश।*

प्रस्तावना

भारतीय महिला जागरण के इतिहास में गांधी युग स्वर्णयुग माना जा सकता है। जब गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 1931 के कराची अधिवेशन के दौरान आजाद में महिलाओं को बराबर संवैधानिक अधिकार देने की बात कही तो इसका कहीं भी रत्तीभर भी विरोध नहीं हुआ। गांधीजी के आदेशों और इच्छाओं के अनुरूप देश की स्त्रियों की सार्वजनिक जीवन में क्रियाशीलता ने संपूर्ण अंग्रेजी शासन को विवेकहीन बना दिया। गांधीजी ने स्त्रियों के लिए सारी शक्ति खोल खोल दी। वे जिस प्रकार हरिजन उत्थान हेतु प्रतिबद्ध थे, उसी प्रकार महिला सुधार की दिशा में सतत् प्रयत्नशील रहे। गांधीजी की दृष्टि में करूणा, त्याग तथा प्रेम की अधिष्ठात्री नारी समाज में अस्तित्वहीन है तो केवल इसीलिए कि समस्त रूढ़ियों और सामाजिक नियम केवल पुरुषों के द्वारा ही बनाये गए हैं और वे सभी स्त्रियों के विरुद्ध हैं। नारी विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। किसी भी देश के आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है, गांधीजी इस सत्य से पूरी तरह अवगत थे और इसलिए गांधीजी का मानना था कि विकास की धारा से यदि स्त्रियों को नहीं जोड़ा गया तो विकास की परिकल्पना कभी साकार नहीं हो सकेगी। 'यंग इंडिया' में उन्होंने स्त्रियों की वकालत करते हुए लिखा था– ''स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता नहीं कर सकता। मेरी राय में कानून की तरफ से स्त्री के लिए वैसी कोई रूकावट नहीं होनी चाहिए जो पुरुश के लिए नहीं है। मैं लड़कों और लड़कियों के साथ बिल्कुल बराबरी के दर्जे का बरताव चाहुँगा।'' गांधीजी ने स्त्रियों की कर्मभूमि में सहधर्मिता को आध्यात्मिक और नैतिक समानता के आग्रह से प्रोत्साहित किया।

हमारे देश की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, अतः उनका सर्वांगीण उत्थान किए बिना भारत के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उन्होंने नारी और पुरुष की समानता, बालविवाह, बाल विधवाओं की स्थिति, दहेज–प्रथा, पर्दा–प्रथा, देवदासी–प्रथा आदि सामाजिक समस्याओं के संबंध में विस्तार पूर्वक अपने विचार व्यक्त किए हैं जो नारी के प्रति उनके उदार तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण के द्योतक हैं।[1] महिला उत्थान या महिला सशक्तिकरण का प्रश्न विश्व के समाज सुधारकों, नेताओं एवं बुद्धिजीवियों के लिए वर्षों से चिन्ता का विषय रहा है। अंतिम व्यक्ति के समाज में भी औरत अंतिम है। गांधी ने कहा था 'मैं औरतों और मर्दों में कोई फर्क नहीं करता।'[2] उन्होंने स्त्री एवं पुरुष को समान माना है। विनोबा के विचारानुसार संस्कृत में बहनों के लिए एक शब्द अबला और दूसरा शब्द महिला है। अबला के माने दुर्बल, कम ताकतवाली, रक्षणीय और महिला का अर्थ होता है महान,[3] बहुत ताकतवाली। 'स्त्री' शब्द में 'स्तृ' का अर्थ होता है विस्तार करना, फैलाना। प्रेम को कुल दुनिया में फैलाना, यह स्त्री का कार्य[4] है।

हमारे समाज में ऐसी अनेक जानी मानी महिलाएं हुई हैं जिन्होंने समाज में अपना स्थान बनाया है। इन महिलाओं ने इस बात की पुष्टि की है कि सचमुच में महिलाओं की भलाई के प्रति गांधीजी का पूरा सरोकार था और उनके शब्दों तथा कार्यों की महिलाओं पर जबरदस्त असर

होता था। कमला देवी चट्टोपाध्याय ने लिखा है– ''बुद्ध के बाद से शायद किसी भी एक व्यक्ति ने अपने उपदेशों से करोड़ों लोगों की नियति को उस तरह से नहीं बदला होगा, जिस तरह गांधीजी ने बदला।'' वूमन्स यूनियन ऑफ सेल्फ एम्प्लाइड यूमेन एसोसिएशन (सेवा) के संस्थापक अध्यक्ष इला आर. भट्ट का कहना है ''अगर गांधीजी ने यह पहल नहीं की होती तो मैं आज वहाँ नहीं होती जहाँ पर अभी हूँ।''[5] स्वामी विवेकानंद[6] ने 'भारतीय नारी' नामक पुस्तक में लिखा है कि, 'पश्चिम की नारी पहले पत्नी है, फिर मां जबकि भारत की नारी पहले मां है और बाद में पत्नी'। पाश्चात्य देशों में गृह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है, भारतीय गृहों में घर की स्वामिनी और शासिका माता है। पाश्चात्य गृह में यदि माता हो भी, तो उसे पत्नी के अधीन रहना पड़ता है, क्योंकि गृह स्वामिनी पत्नी है। हमारे घरों में माता ही सब कुछ है, पत्नी को उसकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिए।

गांधीजी चारित्रिक गुणों के आधार पर स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ मानते हैं। उसे श्रेष्ठ मानने का उनका दर्शन विनाश के दर्शन से एकदम भिन्न निर्माण का दर्शन है, हिंसा से भिन्न अहिंसा का दर्शन है। 'स्त्री और पुरुष में चरित्र की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा ऊँचा है, क्योंकि आज भी वह त्याग, मूक तपस्या, नम्रता, श्रद्धा और ज्ञान की मूर्ति है। राम के पहले सीता और कृष्ण के पहले राधा के नाम का उल्लेख अकारण नहीं है, उसका उचित कारण है।'[7]

स्त्रीपतन के कारण एवं निराकरण के उपाय के अन्तर्गत वैश्यावृत्ति या परस्त्रीगमन की आकांक्षा ने पुरुष को तथा विवशताओं ने महिलाओं को अपनी तृप्ति के लिए प्रोत्साहित किया है। यह इस देश का दुर्भाग्य ही है कि स्त्री अपने को तथा अपने शरीर को कुछ पैसों के निमित्त विक्रय करती है। कहीं देवदासी प्रथा तथा कहीं साधारण वैश्यावृत्ति के रूप में होने वाले यह कार्य एक दुखद स्थिति को जन्म देते है। 'यंग इंडिया' में 1925 को गांधी दुख व्यक्त करते हुए अगाह करते हैं कि ''यह बड़े दुख और अपमान की बात है कि मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिए स्त्रियों को अपनी इज्जत बेचनी पड़े। पुरुष ने स्त्रियों का जो अपमान किया है, उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा।''[8] प्रायः यह देखने में आता है कि इस बुराई में पुरुष वर्ग ही अधिक भागीदार बनता है, जिस कारण समस्त पुरुष वर्ग लांछित और अपमानित है। 'जब तक एक भी ऐसी स्त्री मौजूद है, जिसे हम अपनी लम्पटता का शिकार बनाते हैं, तब तक हम सब पुरुषों का सिर शर्म के मारे नीचा रहेगा। मुझे यह मंजूर है कि पुरुष जाति का नाश हो जाय, मगर यह मंजूर नहीं कि भगवान की पवित्रतम सृष्टि को अपनी वासना का शिकार बनाकर हम पशुओं से भी बीते बन जाये।'[9] गांधीजी का वैश्यावृत्ति के निदान हेतु मानना था कि 'जबतक स्त्रियों में से ही असाधारण चरित्रवाली बहनें उत्पन्न होकर इन पतित बहनों के उद्धार का कार्य अपने हाथ में न लेंगी तब तक वैश्यावृति की समस्या हल नहीं हो सकती।'[10] गांधीजी स्त्री जाति पर लगे प्रत्येक बंधन को तोड़ना चाहते थे। स्वतंत्रता के बाद सरकारी एवं समाज–सुधार के प्रयत्नों से इस दिशा में पर्याप्त सफलता भी मिली है।

बाल–विवाह, अनमेल–विवाह यह प्रथा भी समाज के लिए तत्कालीन समाज में अत्यधिक दुखदायी था। गांधीजी शास्त्रों की दुहाई देने वाले ऐसे धर्म पुरुषों के मतों को भी

स्वीकार नहीं करते कि कन्या का विवाह स्त्री–धर्म शुरू होने से पहले हो जाना चाहिए। बाल–विचाह की दूषित प्रवृति को रोकने के लिए दो पक्षीय कार्य हो सकते हैं। प्रथम तो ऐसे कानून बन सकते हैं जिनसे विवाह आयु को बढ़ा दिया जाये, दूसरा मनुष्य में विवेक जाग्रत कर के। गांधीजी दूसरे विकल्प को अधिक महत्व देते हैं कि स्त्रियों को जागरूक होकर इस प्रथा का डटकर विरोध करना चाहिए। गांधीजी ने इस कार्य के लिए अखिल भारतीय महिला संघ को विशेष रूप से सक्रिय होने के लिए प्रोत्साहित किया था। समाज पर गांधीजी के विचारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था, स्वतंत्रता के उपरान्त देश में अब यह प्रथा कहीं नहीं दिखाई देती, अपवाद स्वरूप कमजोर वर्ग में कभी एकाध उदाहरण मिल जाता है। सरकार अल्पव्यस्क आयु में विवाह को कानून निषेध भी कर दिया है।

विधवा–विवाह के संबंध में गांधीजी की मान्यता प्रचलित मतों को अस्वीकार करते हुए समाज में विधवाओं को उचित स्थान दिलाने के लिए प्रयत्नशील रहे। वे स्वेच्छा से अपनाये गए वैधव्य को स्तुत्य मानते हैं लेकिन विवशताओं में इसे पाप कहते थे और घृणित मानते थे। उनका मानना था कि 'बलपूर्वक पालन कराया गया वैद्यव्य पाप है, स्वेच्छा से पालित वैधव्य धर्म है, आत्मा की शोभा है, समाज की पवित्रता की ढाल है।'[11] बाल–विवाह से उत्पन्न पाप का निराकरण करने का सहज उपाय विधवा पुनर्विवाह है। अतः गांधीजी का यह मत रहा है कि हिन्दुओं को पुनर्विवाह करने की बात को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। गांधीजी बाल–विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए भी अनमेल विवाह की स्वीकृति नहीं देते। विधवा–विवाह का प्रचलन एक साधारण तथ्य बन गया है।

गांधीजी महिलाओं के उत्थान में परदा प्रथा एक अनावश्यक अवरोध मानते थे। यह विवशता मुस्लिम आक्रान्ताओं के आने के कारण बनी थी। बाद में लोगों ने इसे पवित्रता को सुरक्षित करने का एक साधन समझा, किन्तु गांधीजी इस विचार के सर्वथा विरुद्ध थे। उनका मानना था कि पवित्रता कुछ परदे की आड़ में रखने से नहीं पनपती। बाहर से यह लादी नहीं जा सकती। परदे की दीवार से उसकी रक्षा नहीं की जा सकती। उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा। गांधीजी के सद्प्रयासों का प्रभाव आज के महिला समाज पर यह है कि वह इस अनाचार की बेड़ी तथा निर्बलता के प्रतीक को अब प्रायः धारण नहीं करती।

दहेज–प्रथा एक कुप्रथा है जो मानसिक रूप से कुंठित और आर्थिक रूप से परिवार को अपंग बनाती है। सामान्य प्रचलित प्रथाओं में दहेज की राशि नकद (धन के रूप में) तथा सामग्री (सामान के रूप में) स्वीकार्य होती है। इस कुप्रथा का परिणाम यह होता है कि कन्या के माता–पिता आत्मग्लानि वश अपना अहित कर बैठते हैं और स्थिति आत्महत्या तक जा पहुँचती है। गांधीजी का मत है कि 'पैसे के लालच से किया गया विवाह, विवाह नहीं है, एक नीच काम है।'[12] गांधीजी तो यह चाहते थे कि दहेज मांगने वाला हर व्यक्ति विवाह के अयोग्य ही घोषित कर दिया जाये, लेकिन यह सभी का दुर्भाग्य है कि विवाह के लिए धन चाहने वालों को किसी प्रकार भी प्रताड़ित नहीं किया जाता, वरन सम्मान पाता है। उनका मानना था कि 'हमें विवाह के लिए चुनाव का क्षेत्र स्वेच्छापूर्वक खुद बढ़ाना होगा। जाति और प्रान्त की दोहरी दीवार तो

टूटनी चाहिए।'[13] गांधीजी के विचारों का प्रभाव वर्तमान समाज पर पर्याप्त पड़ा है। अन्तर्जातीय विवाह एवं अन्तरप्रान्तीय विवाहों का सुझाव समयानुकूल तो है। साथ ही लड़कियों को लड़कों के समान शिक्षित बनाने पर बल देते हैं। 'मां–बाप अगर लड़कों की तरह लड़कियों को भी ऐसी शिक्षा दे दें तो वे स्वतंत्र होकर अपनी जीविका कमा सकें, तो उन्हें अपनी लड़कियों के लिए वर ढूंढ़ने की चिन्ता न करनी पड़े।'[14]

गांधी स्त्री–पुरुष समानता के प्रबल पक्षधर थे। वे कहते हैं कि जिस रूढ़ि और कानून के बनाने में स्त्री का कोई हाथ नहीं था और जिसके लिए सिर्फ पुरुष ही जिम्मेदार हैं, उस कानून और रूढ़ि के जुल्मों ने स्त्री को लगातार कुचला है। अहिंसा की नींव पर रचे गये जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरुष को अपने भविष्य की रचना का है, उतना और वैसा ही अधिकार स्त्री को भी अपना भविष्य तय करने का है।[15] यह ऐतिहासिक यथार्थ है कि कानून की रचना ज्यादातर पुरुषों के द्वारा हुई है और इस काम को करने में, जिसे करने का जिम्मा मनुष्य ने अपने ऊपर खुद ही उठा लिया है, उसने हमेशा न्याय और विवेक का पालन नहीं किया है।[16] यदि इस मामले में विवेकपूर्वक न्याय किया गया होता तो स्त्रियों को शोषण का शिकार न बनाया गया होता और न ही उन्हें पुरुषों से हीन माना गया होता।

गांधी मानते हैं कि स्त्री पुरुष की साथिन है, जिसकी बौद्धिक क्षमतायें पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं है, पुरुष की प्रवृत्तियों, उन प्रवृत्तियों के प्रत्येक अंग और उपांग में भाग लेने का उसे अधिकार है; और आजादी तथा स्वाधीनता का उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को है। जिस तरह पुरुष अपनी प्रवृत्ति के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी माना गया है, उसी तरह स्त्री भी अपनी प्रवृत्ति के क्षेत्र में मानी जानी चाहिये। स्त्रियाँ पढ़ना–लिखना सीखें और उसके परिणाम स्वरूप यह स्थिति आये, ऐसा नहीं होना चाहिये। यह तो हमारी सामाजिक व्यवस्था की सहज अवस्था ही होनी चाहिये। महज एक दूषित रूढ़ि और रिवाज के कारण बिलकुल ही मूर्ख और नालायक पुरुष भी स्त्रियां से बड़े माने जाते हैं, यद्यपि वे इस बड़प्पन के पात्र नहीं होते और न यह उन्हें मिलना चाहिये।[17] यह पितृ सत्तात्मक एक तरफा परंपरा है, जिसे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। बेटे–बेटी में भेद, विधवा प्रथा, दहेजप्रथा, पर्दा आदि स्त्रियों पर लादी गई परंपरा को गलत बताते हुए गांधी कहते हैं कि स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिये, जो पुरुषों पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं में किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिये। उनके साथ पूरी समानता का व्यवहार होना चाहिये।[18] पुरुष और स्त्री की समानता का यह अर्थ नहीं कि वे समान धन्धे भी करें। स्त्री के शस्त्र धारण करने या शिकार करने के खिलाफ कोई कानूनी बाधा न होनी चाहिये। लेकिन जो काम पुरुष के करने के हैं, उनसे वह स्वभाव विरत होगी। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को एकदूसरे के पूरक के रूप में सजा है। जिस तरह उनके आकार में भेद है, उसी तरह उनके कार्य भी मार्यदित हैं।[19]

आधुनिक भारत में स्त्रियों को सामाजिक स्तर पर जागरूक करने व उनको नेतृत्व

प्रदान करने और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने में गांधीजी का अतुलनीय योगदान हैं। स्त्री को स्त्रीत्व से आगे व्यक्तित्व देने में गांधीजी से बढ़कर शायद ही कोई इतिहास का चरित्र ठहर सके।[20] गांधीजी के आन्दोलन से दूसरा महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार स्त्रियों में दिखाई दिया। उत्तर भारत की स्त्रियां भी, जिनमें पर्दा प्रथा का भारी प्रचार है वे भी बड़ी संख्या में गांधीजी की सभा में उपस्थित होती थीं।[21]

भारतीय परंपरा व धर्मशास्त्रों में स्त्रियों पर जो वर्जनाएं लादी गई है इसकी चर्चा करते हुए महात्मा गांधी कहते हैं कि यह सोचकर दुःख होता है कि स्मृतियों में कुछ ऐसे पाठ मिलते हैं, जिनके प्रति ऐसे लोगों को कोई श्रद्धा नहीं हो सकती, जो स्त्री की स्वतन्त्रता को अपनी स्वतन्त्रता जैसा ही महत्व देते हैं, और उसे मानवजाति की माता मानते हैं। इसके विपरीत स्मृतियों में ऐसे पाठ भी मिलते हैं, जिनमें स्त्री को उसका उचित स्थान दिया गया है और उसके प्रति उच्च कोटि का सम्मान प्रकट किया गया है । अब प्रश्न यह उठता है कि एक ही स्मृति में पाये जानेवाले इन परस्पर विरोधी पाठों के संबंध में क्या किया जाय इनके उन अंशों के संबंध का क्या किया जाय, जो नैतिक भावना के विपरीत हैं? मैं इन स्तम्भों में कई बार लिख चुका हूं कि धर्म ग्रन्थों के नाम से जो भी पुस्तकें छप चुकी हैं, उन्हें शब्द प्रतिशब्द ईश्वरीय या दैवी प्रेरणा से उदभूत मानने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति उनमें क्या अच्छा और प्रामाणिक है अथवा क्या बुरा, अप्रामाणिक एवं प्रक्षिप्त है इसका निर्णय करने का अधिकारी नहीं हो सकता। अतएव प्रामाणिक विद्वानों का एक ऐसा संघटन होना चाहिए, जो धर्मग्रंथों के नाम से मुद्रित समूचे वांङमय की छानबीन ऐसे सभी अंशों को उसमें से निकाल दे, जिनका कोई नैतिक मूल्य नहीं है या जो धर्म एवं नैतिकता के मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध हैं और उनका ऐसा संस्करण प्रस्तुत करे, जिससे हिंदुओं का सही मार्ग दर्शन हो सके।[22] इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को हीनतर ठहराने वाले धार्मिक मान्यताओं, शास्त्रों के उद्धरणों तक को भी गांधी संशोधित करने की वकालत करते हैं।

गांधी ने जो भी रचनात्मक कार्यक्रम चलाये और जो भी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक संस्थाएं स्थापित की, उनमें हमेशा स्त्रियों को पुरुषों के समान उत्तरदायित्व एवं स्थान प्राप्त हुआ। महात्मा गांधी की यह अभिवृत्ति आधुनिक भारत में स्त्रियों को समानता की पद–दिलाने में सर्वाधिक महत्त्व रखती है।[23] भारतीय इतिहास में व्यापक रूप में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण खोज पाना कठिन है और स्त्रियों आज जहां तक पहुंच पाई हैं, उसमें गांधी के इस साकारात्मक योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। गांधीजी ईमानदारी से इस तथ्य में विश्वास करते थे कि स्त्री पुरुष के समान है और स्त्री–पुरुष दोनों ही सामाजिक कार्यों के निर्वाह में संयुक्त रूप से उत्तरदायी हैं। इसीलिए वे अपने अधीन काम करने वाली स्त्रियों से भी बड़ी कड़ाई से काम लिया करते थे। उन्हें स्त्रियों को कठिन में न और खतरनाक काम सौंपने में भी कभी हिचक न हुई। उन्हें पूरा विश्वास रहता था कि वे किसी भी चुनौती को स्वीकार कर सकती हैं।[24] स्त्रियों को वे पुरुषों से किसी भी मामले में हीनतर अथवा कमतर मानने को तैयार नहीं थे। वे चाहते थे कि देश के निम्न से निम्न व्यक्ति उच्च से उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हों। यही उनका सपना था।

स्त्री के प्रति उनकी ऐसी ही निष्ठा और विश्वास की भावना थी। इस देश में अनेक नेताओं और सुधारकों ने स्त्रियों के उन्नयन का कार्य किया है, किन्तु राष्ट्रपिता ने उसे जैसा ऊंचा सम्मान प्रदान किया था, वैसा कोई नहीं कर सका है। उन्होंने असीम सहानुभूति, समवेदना और प्रेम से स्त्रियों का हाथ पकड़ा और उन्हें सहारा देते हुए समाज में न्यायोचित[25] सम्मान प्राप्त करने की ओर अग्रसर किया।

गांधी ने नारी के मूल में छिपी मातृ शक्ति, त्याग करुणा, दान, प्रेम एवं अहिंसा को प्राथमिक माना। अतः उन्होंने कहा कि नारी को घर की चाहरदीवारी से बाहर निकालना ही होगा। वह दासी न होकर स्वामिनी हैं। वह दिल बहलाव की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन की निरन्तर साधना में प्रेम और सहचर्य की दीपशिखा है। गांधी ने माना कि स्त्री पुरुष की साथी हैं जिसकी बौद्धिक क्षमाताएँ पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं है। समाज की प्रक्रिया में दोनों भागीदार है। इसलिए स्त्री शिक्षा एवं विकास के अभाव में सामाजिक पुनःनिर्माण असम्भव होगा। भारतीय आन्दोलन में स्त्रियों के योगदान से प्रेरित होकर गांधी ने उनकी क्षमता एवं साहस को वरीयता दी यदि नारी समाज में निम्न माना जाए,तो राष्ट्रीय प्रगति अवरुद्ध होना स्वाभाविक है।[26] क्योंकि आधी आबादी को छोड़कर कोई समाज, देश आगे नहीं बढ़ सकता।

गांधी ने नारी की स्वतंत्रता एवं शिक्षा पर बल दिया और उन लोगों की कटु आलोचना की जो इस संदर्भ में उदासीन रहते हैं। गांधी स्त्रियों की समुचित शिक्षा के हिमायती थे लेकिन वे यह भी मानते थे कि स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योग पुरुष की नकल करके या नकल करके वह उस ऊँचाई तक नहीं उठ सकती जिस ऊंचाई तक उठना उसके लिये संभव नहीं है। उसे पुरुष की पूरक बनना चाहिये। नकलची नहीं। हिन्दू–मुस्लिम एकता, छूआछूत का निवारण तथा स्त्रियां की मर्यादा का उत्थान तीन ऐसे मसले थे जिसके लिए उन्होंने अपनी सारी जिंदगी लगा दी। इन तीनों कार्यों में उन्होंने अपना जीवन अर्पित कर दिया था। उनके हर प्रयास में इन तीनों पहलुओं पर विशेष सजगता देखने को मिलती है। गांधीजी ने हमें अपनी सामाजिक परंपरा की घेरेबंदियों और जंजीरों से भी मुक्त किया। उन्होंने स्त्रियों और पुरुषों, तथाकथित नीची जाति और ऊंची जाति के लोगों तथा देहाती और शहरी जनता की समानता के संबंध में सूत्र रूप से अपनी जो मान्यता दी, उससे सारी की सारी जनता गांधीवादी आंदोलन में प्रविष्ट हो गयी। यह समझना कठिन नहीं है कि अभी तक जिन सामाजिक समस्याओं पर महिलाओं के उत्थान हेतु विचार गांधीजी द्वारा किया गया उसका महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्त्रियों के अधिकारों के संबंध में गांधीजी ने जो कुछ कहा था वह आज भी पूर्णतः सार्थक और मान्य है। स्त्रियों की दशा में परिवर्तन लाने का मार्ग प्रशस्त करने में गांधीजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

संदर्भ ग्रंथ

1. नारायण, जयप्रकाश; *सम्पूर्ण क्रांति संमपूर्ण क्रांति का गज,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, संस्करण–तीसरा, अगस्त 2006, पृ0 **18**.
2. लोहिया, राममनोहर; *समाजवादी आन्दोलन का इतिहास,* पृ0 **45.**

3. पासवान, सकून प्रज्ञाचक्षु; भारत रत्न डॉ. भीम राव अम्बेडकरः *सृष्टि और दृष्टि*, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 **40**.
4. लोहिया, राम मनोहर; *जाति प्रथा*, पृ0 **1.**
5. सिंह, सविता; *'गांधी और महिला सशक्तीकरण'*, रोजगार समाचार, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 28 सितम्बर, 2002.
6. विवेकानंद; *भारतीय नारी,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1997, पृ0 **37–38.**
7. वीरा, ब्रिटेन, *'गांधीजीः ब्रिटेन में'*(आलेख), महात्मा गांधी 100 वर्ष, सं. एस. राधा कृष्णन, वही, पृ0 **23.**
8. *यंग इंडिया,* 15 सितम्बर, 1921.
9. *यंग इंडिया,* 16 अप्रैल, 1925.
10. *यंग इंडिया,* 21 जुलाई, 1921.
11. *हिन्दी नवजीवन,* 28 मई, 1925.
12. *हिन्दी नवजीवन,* 10 जुलाई, 1925.
13. *यंग इंडिया,* 3 फरवरी, 1927.
14. *हरिजन,* 25 जुलाई, 1936.
15. *हरिजन,* 5 सितम्बर, 1936.
16. गांधी, म. क., *रचनात्मक कार्यक्रम,* पृ0 **332–34**.
17. *स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गांधी,* पृ0 **424**.
18. वही, पृ0 **425.**
19. *यंग इंडिया,* 17 अक्तूबर, 1929.
20. *हरिजन,* 2 दिसंबर, 1939.
21. कालेलकर, काका एवं अन्य गांधी:, *व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव,* वही, पृ0 **493.**
22. राधाकृष्णन, एस., *महात्मा गांधी 100 वर्ष,* वाराणसी, 1969, पृ0 **164.**
23. वही, पृ0 **228.**
24. वही, पृ0 **230**.
25. वही, पृ0 **223**.
26. वही, पृ0 **224**.